**स्टेशन हाउस अधिकारी, सीबीआई/एसीबी/बैंगलोर**

**बनाम**

**बी ० ए श्रीनिवासन और अन्य**

**(2019 की आपराधिक अपील संख्या 1837)**
**05 दिसम्बर, 2019**
**[उदय उमेश ललित, इंदु मल्होत्रा और कृष्ण मुरारी, जे.जे.]**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 2019 का 1837

कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश दिनांक 08.08.2018 2015 की आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 834 से।

सुश्री सोनिया माथुर, वरिष्ठ अधिवक्ता, विवेक नारायण शर्मा, सचिन शर्मा, सुशील दुबे, सुश्री दिव्या नायर, अनुज अग्रवाल, पुनीत पाठक, अरविन्द कुमार शर्मा । अपीलकर्ता के अधिवक्ता ।

सुश्री वी. मोहना, वरिष्ठ वकील, सुश्री रजनी के. प्रसाद,सुश्री एन अन्नपूर्णानी । उत्तरदाताओं के अधिवक्ता ।

न्यायालय का निर्णय **उदय उमेश ललित, जे.** के द्वारा दिया गया।

1.अनुदत्त छुट्टी दी गई।

2.यह अपील उच्च न्यायालय[1] द्वारा पारित दिनांक 08.08.2018 के फैसले और आदेश को चुनौती देती है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत 2015 की आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 834 को स्विकृति दी गई थी और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 120बी के साथ पठित धारा 419 , 420 , 467 , 468 , 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 13(1)( डी) और धारा 13(2) के तहत दंडनीय अपराधों से प्रतिवादी नंबर 1 को उन्मुक्त कर दिया गया।

3. प्रतिवादी नंबर 1 31.10.2012 को विजया बैंक के सहायक महाप्रबंधक के रूप में सेवानिवृत्त हुआ।28.10.2013 को, ऊपर उल्लिखित अपराधों के संबंध में प्रतिवादी नंबर 1 के खिलाफ महाप्रबंधक, विजया बैंक, प्रधान कार्यालय, बैंगलोर द्वारा दी गई शिकायत के अनुसार एफआईआर आरसी 12 (ए)/2013 दर्ज की गई थी।अनुसन्धान पूरी होने के बाद, उक्त अपराध के संबंध में प्रतिवादी नंबर 1 और अन्य आरोपियों के खिलाफ 31.10.2014 को आरोप पत्र दायर किया गया था। अन्य बातों के साथ यह आरोप लगाया गया:-

> "3. श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने 11.01.2010 से 20.10.2012 की अवधि के दौरान सहायक महाप्रबंधक (एजीएम) और शाखा प्रमुख, विजया बैंक, मेयो हॉल शाखा, बैंगलोर के रूप में काम करते हुए श्री बी. लक्ष्मण (ए-3) श्रीमती शांता गौड़ा (ए-4) और श्री एसवी इस्लोर (ए-5) के साथ एक आपराधिक साजिश रची, विजया बैंक, मेयोहॉल शाखा, बैंगलोर को धोखा देने और मेसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स (ए-2) को अनुचित वित्तीय सुविधा देने के लिए फर्जी और मनगढ़ंत दस्तावेजों के आधार पर और इसी साजिश के तहत श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने 200 लाख रुपये का टर्म लोन और 100 लाख रुपये का कैश क्रेडिट हाइपोथेकेशन (कार्यशील पूंजी)ऋण

स्वीकृत और वितरित किया, मेसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स (ए-2) के पक्ष में बिना यथोउचित परिश्रम के और विजया बैंक के सभी मौजूदा नियमों और विनियमों का घोर उल्लंघन करते हुए, ए-3 और ए-4 को सुविधा प्रदान की और नियमों और शर्तों के खिलाफ ऋण-निधि को स्थानांतरित किया, जिससे विजया बैंक को गलत नुकसान हुआ और दूसरों को तदनुरूप लाभ हुआ।

... ... ...

8. श्री बी. लक्ष्मण (ए-3) और उनकी पत्नी श्रीमती शांता गौड़ा (ए-4) ने धोखे से दिनांक 8.06.2011 के फ्रैंकिंग नंबर 57724 वाले ई-स्टांप पेपर की फोटोकॉपी पर दिनांक 10.06.2011 का एक समझौता बनाया और श्री वेंकटरमण भट्ट (ए-6) को सद्भावना के रूप में 1.00 करोड़ रुपये का भुगतान दर्शाते हुए उनकी मालिकाना कंपनी मेसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स के अधिग्रहण के अपने बेईमान दावे का समर्थन में विजया बैंक को इसकी एक प्रति सौंपी। श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने जानबूझकर समझौते की सत्यता या प्रमाणिकता का पता लगाना छोड़ कर बेईमानी से समझौते की फोटोकॉपी स्वीकार कर ली। यह भी सामने आया है कि उपरोक्त समझौता धोखाधड़ी से ई-स्टांप पेपर की फोटोकॉपी पर दिनांक 08.06.2011 को फ्रैंक 57724 के तहत किया गया था और मूल स्टांप पेपर कोरा छोड़ दिया गया था, जिसे श्री एसवी इस्लोर (ए -5) के कार्यालय परिसर से जब्त किया गया था। इस प्रकार यह सभी आरोपी व्यक्तियों के कपटपूर्ण इरादों को स्थापित करता है कि वे आवश्यकता पड़ने पर जाली दस्तावेज़ बनाते और असुध उपस्थान (मिथ्या) करते हैं कि स्वामित्व इकाई को ए-6 से ए-3 और ए-4 द्वारा अधिग्रहण किया गया था।

... ... ...

16. श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने विजया बैंक, मेयोहॉल शाखा के एजीएम और शाखा प्रमुख के रूप में अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग करते हुए बेईमानी से अन्य आरोपियों के साथ आपराधिक साजिश के तहत,आरोपी व्यक्तियों का पक्ष लेने के लिए धोखाधड़ी से ऋण प्रस्तावों पर कार्रवाई की और ऋण आवेदन का मूल्यांकन किया, विजया बैंक के नियमों और विनियमों का घोर उल्लंघन करते हुए। उन्होंने जानबूझकर ए-3 और ए-4 द्वारा प्रस्तुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए गए वित्तीय विवरणों को स्वीकार कर लिया, भले ही उनका ऑडिट नहीं किया गया था और उन्हें उधारकर्ता फर्म यानी मैसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स (ए-2) के क्रेडिट मूल्यांकन के लिए चयन किया गया । उन्होंने जानबूझकर उधारकर्ता फर्म द्वारा प्रस्तुत वित्तीय विवरणों का विश्लेषण करने के लिए यथोउचित परिश्रम नहीं किया, जिसमें कई विसंगतियां थीं। उन्होंने उधारकर्ता के पते पर अनिवार्य पूर्व-मंजूरी सत्यापन भी नहीं किया जिसमे बैंक को यह पता लगाना होता है कि क्या ऋण आवेदन में किए गए दावे के अनुसार कोई व्यावसायिक गतिविधियां जैसे बिजली उपकरण आदि का निर्माण चल रहा था या नहीं । श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) के आपराधिक कृत्यों ने आरोपी व्यक्तियों को मेसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स (ए-2),के मिथक अस्तित्व को गलत तरीके से पेश करने में मदद की जो वास्तव में केवल ए-3 और ए-4 द्वारा बनाए गए जाली पार्टनरशिप डीड दिनांक 10.06.2011 पर ही अस्तित्व में था।

17. श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने स्वयं क्रेडिट प्रक्रिया नोट तैयार किया और तत्कालीन सहायक प्रबंधक श्री ज्योति प्रकाश शेट्टी के हस्ताक्षर मूल्यांकन अधिकारी के कॉलम में प्राप्त किये। तत्कालीन परिवीक्षाधीन प्रबंधक श्री नबील अहमद को भी, उनके प्रशिक्षण के प्रतीक के रूप में, प्रक्रिया नोट में अपने लघु हस्ताक्षरकरने के लिए कहा गया था जो कि उन्होंने उनके प्रशिक्षण के प्रतीक के रूप में किया । यह पता चला है कि ए-1 ने 350 लाख रुपये (200 लाख रुपये का सावधि ऋण 130 लाख

रुपये की कार्यशील पूंजी और 20 लाख रुपये की बैंक गारंटी) के अनुरोध के मुकाबले 300 लाख रुपये (200 लाख रुपये का सावधि ऋण और 100 लाख रुपये का नकद ऋण) की कुल राशि के लिए प्रस्ताव तैयार किया था। बिना किसी स्पष्टीकरण/औचित्य के कि आवेदक की आवश्यकताओं में इस तरह की कमी का कारण क्या है।

18. श्री बी. लक्ष्मण (ए-3) ने धोखे से दिनांक 10.08.2011 को एक जाली पत्र संख्या REFREF: SP: QT: 155: 2011 प्रस्तुत किया, जिस पर कथित तौर पर JAK, पार्टनर्स के रूप में हस्ताक्षर किए गए थे, कोटेशन/प्रोफार्मा चालान के साथ 2,69,60,496/- रुपये की कुल राशि वी-टेक इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज के, जो कथित तौर पर मेसर्सवी-टेक इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज द्वारा जारी किए गए थे।

... ... ...

33. श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) को भी इस बात की पूरी जानकारी थी कि संपार्श्विक सुरक्षा के रूप में दी गई संपत्ति तीसरे पक्ष (किरायेदारों) के कब्जे में थी। हालाँकि, ए-1 ने अपने क्षेत्र निरीक्षण और मूल्यांकनकर्ता द्वारा अपनी मूल्यांकन रिपोर्ट में की गई टिप्पणियों के बावजूद, बेईमानी और धोखाधड़ी से इस महत्वपूर्ण तथ्य को नजरअंदाज किया। बैंक के समवर्ती लेखा परीक्षक ने भी अपनी रिपोर्ट में इस तथ्य को बताया कि किरायेदार का कब्ज़ा बैंक के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा, क्योंकि अगर आवश्यकता पड़ने पर, बैंक , अपने राशि बकाया की वसूली के लिए संपत्ति की बिक्री को लागू करवाना मुश्किल होगा। किरायेदार श्री नागेश पुत्र स्वर्गीय कृष्णप्पा, को किराया दे रहे थे, जिन्होंने संपत्ति श्री नीलकंठ सैनिकोप को बेच दी थी, जिनसे ए-3 ने संपत्ति खरीदी थी। ए-1 ने जानबूझकर किरायेदारों के अधिकारों की प्रकृति का पता लगाने का कोई प्रयास नहीं किया, इस तथ्य के बावजूद कि भविष्य में यह बैंक द्वारा गिरवी रखी गई संपत्ति की प्रवर्तनीयता को प्रभावित करेगा।

34. श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने मेसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स को ऋण की प्रोसेसिंग और मंजूरी से पहले गिरवी रखी गई संपत्ति पर कानूनी ऑडिट रिपोर्ट प्राप्त न करके बैंक के मौजूदा नियमों का भी उल्लंघन किया। श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने यह रिपोर्ट ऋण स्वीकृत और वितरित होने के छह महीने से अधिक समय बाद 19.04.2012 को प्राप्त की।

35. उपर्युक्त कृत्यों द्वारा, श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1), तत्कालीन एजीएम, विजया बैंक, मेयो हॉल शाखा, बैंगलोर; मेसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स (ए-2); श्री बी. लक्ष्मण @ लक्ष्मण रेड्डी (ए-3); श्रीमती शांता गौड़ा (ए-4); श्री एस वी आईस्लूर (ए-5) और श्री वेंकटरमण भट (ए-6) ने धोखाधड़ी और स्वयं को मैसर्स वी-टेक इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज का मालिक, के रूप में प्रस्तुत करने का अपराध किया। धोखाधड़ी के उद्देश्य से कोटेशन, कैश/क्रेडिट बिल, वाउचर आदि जैसे दस्तावेजों की जालसाजी की, जाली दस्तावेजों को असली के रूप में इस्तेमाल करके आपस में आपराधिक साजिश रची, जिससे बैंक को गलत नुकसान हुआ। और स्वयं को तथा दूसरों को तदनुरूप लाभ मिला है। अनुसन्धान से यह भी स्थापित हुआ कि श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) ने विजया बैंक, मेयो हॉल शाखा, बैंगलोर के तत्कालीन एजीएम के रूप में अपने आधिकारिक पद का घोर दुरुपयोग करके आपराधिक कदाचार का अपराध किया और आरोपी निजी व्यक्तियों को आर्थिक लाभ पहुंचाया जो की, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम , 1988 के दंडात्मक प्रावधानों को आकर्षित करता है। श्री बीए श्रीनिवासन (ए -1), मेसर्स निखारा इलेक्ट्रॉनिक्स एंड अलाइड टेक्निक्स (ए-2), श्री बी. लक्ष्मण (ए-3), श्रीमती शांता गौड़ा (ए-4), श्री श्रीपाद विश्वनाथ इस्लोर (ए-5) और श्री

वेंकटरमण भट्ट (ए-6) के उपरोक्त कृत्य धारा 120-बी के साथ पठित 420, 419, 468 और 471 आईपीसी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम,1988 की धारा 13(1)(डी) और 13(2) के तहत दंडनीय अपराध हैं ।

36. श्री बी.ए. श्रीनिवासन (ए-1) 31.10.2012 को विजया बैंक से सेवानिवृत्त हुए हैं; भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम,1988 की धारा 19 के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।"

4.अदालत द्वारा संज्ञान लेने के बाद, प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 227 और 239 के तहत आरोपमुक्त करने की मांग की गई थी। इस आवेदन को अतिरिक्त सिटी सिविल और सत्र न्यायाधीश और सीबीआई मामलों के प्रधान विशेष न्यायाधीश, बैंगलोर ने अपने आदेश दिनांक 13.04.2015 द्वारा खारिज कर दिया था। ऐसा पाया गया :-

". . . ...जैसा कि आरोप पत्र और गवाहों के बयान से देखा जा सकता है, आरोपी नंबर 1 ने जानबूझकर आरोपी नंबर 2 फर्म के ऋण आवेदन पर कार्रवाई करते समय बैंक के नियमों और विनियमों और बैंक मानदंडों का उल्लंघन किया है और इस तरह वह आरोपी नंबर 3 से 6 के साथ आपराधिक साजिश में शामिल हो गया है और आरोपी नंबर 3 और 4 को दो करोड़ रुपये नकद का सावधि ऋण और. एक करोड़ रुपये प्राप्त करने की सुविधा देने के लिए मनगढ़ंत और जाली वाउचर, बढ़े हुए वित्तीय विवरणों के चालान स्वीकार किए। उक्त सावधि ऋण और तीन करोड़ रुपये के नकद ऋण का बहुउपयोग जिस उद्देश्य के लिए ऋण स्वीकृत किया गया था उस उद्देश्य के अलावा अन्य उद्देश्य के लिए किया गया। इस प्रकार, सभी सामग्रियां स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि शुरुआत से ही आरोपी नंबर 1 की ओर से बेईमानी का इरादा था। अनुसंधानकर्ता द्वारा एकत्र की गई उक्त परिस्थितियां और सामग्री स्पष्ट रूप से ऐसा दर्शित करता है कि आरोपी नंबर 1 आरोपी नंबर 3 से 6 के साथ आपराधिक साजिश में शामिल हो गया था और उसने जाली, मनगढ़ंत चालान और बढ़े हुए वित्तीय विवरण स्वीकार कर लिए थे, यह जानते हुए भी कि वे जाली थे. . .

. . . . . .

हालांकि आरोपी नंबर 1 लोक सेवक था, वह 31.10.2013 को विजया बैंक के सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है। इसलिए, आरोपी नंबर 1 पर मुकदमा चलाने के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के तहत आवश्यक मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। आरोपी नंबर 1 द्वारा दायर डिस्चार्ज आवेदन योग्यता से रहित है और इसके विपरीत, आईपीसी की धारा 120बी, 420, 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम,1988 की धारा 13(2) के साथ पठित 13(1)(डी) धाराओं के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप तय करने के लिए आरोपी नंबर 1 के खिलाफ पर्याप्त सामग्रियां हैं ।

5. प्रतिवादी नंबर 1 ने, उच्च न्यायालय में आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 834/2015 दायर की, जिसे निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी जो वर्तमान में अपील का विषय है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी नंबर 1 के संबंध में दिनांक 13.04.2015 के आदेश को रद्द कर दिया और उसे उन अपराधों से मुक्त कर दिया जिनके लिए उस पर आरोप लगाने की मांग की गई थी।

6. प्रतिवादी नंबर 1 के खिलाफ आरोप, अधिक से अधिक, प्रशासनिक चूक हो सकते हैं, इस दलील पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय ने पाया:-

"10. . . . . प्रशासनिक चूक के इन पहलुओं पर आरोप तय करते समय विचार नहीं किया जा सकता है। जब तक गवाहों से जिरह नहीं की जाती, तब तक कोई निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता कि प्रक्रिया का पालन करने में चूक प्रशासनिक चूक है या जानबूझकर की गई है। इसलिए, यह तर्क बिंदु आरोपी नंबर 1 को आरोप मुक्त करने का आधार नहीं हो सकता है। इसलिए, निष्कर्ष को देखते हुए, यह माना जा सकता है कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री आरोपी नंबर 1 के खिलाफ आरोप तय करने के लिए पर्याप्त है, इस संबंध में विशेष न्यायालय का निष्कर्ष कि आरोपी नंबर 1 को इस आधार पर बरी नहीं किया जा सकता, दिमाग का उपयोग न करने या किसी कमजोरी या अवैधता का संकेत नहीं देते हैं। इसेकायम रखने की जरूरत है।

हालाँकि, मंजूरी के मुद्दे पर उच्च न्यायालय ने कहा:-

"11. हालाँकि, मंजूरी के संबंध में यह निष्कर्ष कायम नहीं रखा जा सकता है। विशेष अदालत ने माना है कि मंजूरी आवश्यक नहीं है क्योंकि आरोप पत्र दाखिल होने तक आरोपी नंबर 1 सेवानिवृत्त हो चुका था। लेकिन याचिकाकर्ता के वकील का तर्क है कि सीआरपीसी की धारा 197 के अनुसार मंजूरी आवश्यक है। इस बिंदु पर चर्चा करने से पहले, मैं यह विचार करना आवश्यक समझता हूं कि विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारणीय अपराध उस समय से संबंधित हैं जब अभियुक्त लोक सेवक के रूप में सेवा में था। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के तहत मंजूरी इसलिए आवश्यक है कि कोई लोक सेवक किसी तुच्छ और झूठे मामले में न फंसे। मंजूरी की आवश्यकता,एक लोक सेवक को झूठे या कष्टप्रद या तुच्छ अभियोजन से बचाती है। इसलिए, एक लोक सेवक को सेवा के दौरान मिलने वाली सुरक्षा उसकी सेवानिवृत्ति के बाद भी मिलनी चाहिए। यह नहीं भुलाया जा सकता कि सेवानिवृत्ति के बाद भी उन पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत अपराध का मुकदमा चलाया जाता है । वास्तव में, सेवानिवृत्ति व्यक्ति को लोक सेवक के भेष से हटा देती है; लेकिन न्याय संगत यह है कि सेवानिवृत्ति के बाद भी वही सुरक्षा मिलनी चाहिए.....।"

(हमारे द्वारा रेखांकित)

इसके बाद, इस न्यायालय के, **कालीचरन महापात्रा बनाम उड़ीसा राज्य[2], र.बालकृष्ण पिळ्ळै बनाम केरला राज्य[3], पंजाब राज्य बनाम लाभ सिंह[4] और एन.के. गांगुली बनाम सीबीआई, नई दिल्ली[5]** के निर्णयों के आधार पर दलीलों से निपटते समय निम्नानुसार मामले पर विचार किया गया:-

"सीबीआई के विद्वान स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया कि जहां तक भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों का संबंध है, यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्हें आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था; इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 197 के तहत भी मंजूरी आवश्यक नहीं है। यदि पहले आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को देखा जाए, और विशेष रूप से साजिश के संदर्भ में, तो यह आरोप तय करने के चरण में, निष्कर्ष निकालना मुश्किल है कि अपराध आधिकारिक क्षमता से जुड़े हो सकते हैं या नहीं।इसके लिए गहन परीक्षण किये जाने की आवश्यकता है।अगर एनके गांगुली (पूर्व) के तथ्यों को देखा जाए तो वहां भी आरोपियों पर भारतीय दंड संहिता के कुछ अपराधों के अलावा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम

के तहत मुकदमा चलाने की मांग की गई थी । इस प्रकार देखा जाए तो पहले आरोपी को भारतीय दंड संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी के अभाव में आरोपमुक्ति का लाभ मिलना चाहिए.....।"

इस प्रकार, निष्कर्ष यह निकाला गया कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री प्रतिवादी नंबर 1 के खिलाफ आरोप तय करने के लिए पर्याप्त थी। हालाँकि , भारतीय दंड संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी के अभाव के मुद्दे पर उन्मुक्ति का लाभ आरोपी को दिया गया था।

7. उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को चुनौती देने वाली इस अपील में, हमने विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती सोनिया माथुर को सुना और इस दृष्टिकोण के समर्थन में और श्रीमती वी. मोहना, वरिष्ठ वकील प्रतिवादी नंबर 1 के लिए को भी सुना ।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती सोनिया माथुर ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 19 के तहत सुरक्षा एक लोक सेवक को केवल तब तक उपलब्ध है जब तक वह रोजगार में है और लोक सेवक के पद छोड़ने या सेवानिवृत्त होने के बाद किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। भारतीय दंड संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी के संबंध में , यह प्रस्तुत किया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 197 के दायरे में आने वाली किसी कार्रवाई के लिए, इसे एक लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्यों या कार्यों से अभिन्न रूप से जोड़ा जाना चाहिए और यदि कार्यालय का केवल उन गतिविधियों में शामिल होने के लिए एक आवरण के रूप में उपयोग किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप लाभार्थियों को गैरकानूनी लाभ होता है, उक्त धारा 197 के तहत सुरक्षा उपलब्ध नहीं होगी।

यह भी प्रस्तुत किया गया कि इस न्यायालय का निर्णय एन.के  गांगुली बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, नई दिल्ली के मामले इसमें शामिल विशिष्ट तथ्यों के संदर्भ में था।

दूसरी ओर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती वी. मोहना ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी नंबर 1 वर्ष 2012 में सेवानिवृत्त हो गया; उनके खिलाफ लगाए गए आरोप, अधिक से अधिक, उनकी ओर से प्रशासनिक चूक के समान होंगे और, निश्चित रूप से कोई आपराधिक इरादा नहीं था की संबंधित आपराधिक आरोपों को आकर्षित किया जा सके। और यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136(1) के तहत अपने अधिकार क्षेत्र में इस मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

9. **एसए वेंकटरमन बनाम राज्य**[6] में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम , 1947 के समान प्रावधानों से निपटने के दौरान, मंजूरी की आवश्यकता है या नहीं, यह निर्धारित किया गया था कि संबंधित प्रावधानों के तहत सुरक्षा एक लोक सेवक को उपलब्ध नहीं होगी, जब उन्होंने अपना पद छोड़ दिया है या सेवा से सेवानिवृत्त हो गए है । यह कहा गया था:-

".....यदि भारतीय दंड संहिता की धारा 161  के तहत एक लोक सेवक द्वारा कोई अपराध किया गया था,।  लेकिन, जिस समय एक अदालत को अपराध का संज्ञान लेने के लिए कहा गया था, वह व्यक्ति लोक सेवक नहीं रह गया था, अधिनियम की धारा 6 को प्रभावी बनाने में दो आवश्यकताओं में से एक का अभाव होगा और पिछली मंजूरी अनावश्यक नहीं होगी । अधिनियम की धारा 6(1) में प्रयुक्त शब्द पर्याप्त रूप से स्पष्ट हैं और उन्हें प्रभावी बनाया जाना चाहिए।  अधिनियम की धारा 6(1) में प्रयुक्त शब्दों में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो की यह सुझाव दे कि किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में अदालत द्वारा उसमें उल्लिखित अपराधों का संज्ञान लेने से पहले पूर्व मंजूरी आवश्यक थी, जो अदालत के संज्ञान लेने के समय लोक सेवक नहीं रह गया था, हालांकि जिस समय अपराध किया गया था उस समय वह लोक सेवक था.....।"

इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून का लगातार पालन किया गया है। उदाहरण के लिए, **लाभ सिंह** में यह पाया गया:

> "9. वर्तमान मामले में विचाराधीन लोक सेवक 13-12-1999 और 30-4-2000 को सेवानिवृत्त हुए थे। उन पर मुकदमा चलाने की मंजूरी सेवानिवृत्ति के बाद खारिज कर दी गई थी। यानी पहले 13-9-2000 को और बाद में 24-9-2003 को। क्यूंकि लोक सेवक सेवा से सेवानिवृत्त हो गए थे उनके पास भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम अधिनियम की धारा 19 के तहत मंजूरी देने पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था। इस मुद्दे पर कानून बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि लोक सेवक अदालत द्वारा संज्ञान की तारीख पर पहले ही सेवानिवृत्त हो चुका है, तो पीसी अधिनियम के तहत अपराधों के लिए लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। *एसए वेंकटरमन बनाम राज्य* में, इस न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 6(1) की व्याख्या करते हुए , जो प्रावधान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19(1) के समान है , ने माना कि एक व्यक्ति जो उस समय लोक सेवक नहीं रह गया था जब अदालत को संज्ञान लेने के लिए कहा गया था तब उस मामले में कोई मंजूरी आवश्यक नहीं थी। *स. ए वेंकटरमन बनाम राज्य* में अपनाए गए दृष्टिकोण को इस न्यायालय ने *सी. आर बंसी बनाम महाराष्ट्र राज्य*[7] और *कालीचरण महापात्रा बनाम उड़ीसा राज्य* में और इस न्यायालय की संविधान पीठ ने *के. वीरास्वामी बनाम भारत संघ*[8] में अपनाया था । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत आरोप का संबंध है, विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को रद्द करना उच्च न्यायालय के लिए उचित नहीं था।"

10. नतीजतन, अधिनियम की धारा 19 के तहत किसी भी मंजूरी की अनुपस्थिति के आधार पर, अधिनियम के तहत दंडनीय अपराधों के संबंध में मुक्ति की मांग करने वाले किसी भी आवेदन पर विचार करने का कोई अवसर या कारण नहीं था। उच्च न्यायालय का यह कहना भी उचित नहीं था कि *'सेवा के दौरान एक लोक सेवक को मिलने वाली सुरक्षा उसकी सेवानिवृत्ति के बाद भी उपलब्ध होनी चाहिए*' यह कथन अधिनियम की धारा 19 के तहत मंजूरी की आवश्यकता के संबंध में, पूरी तरह से असंगत है इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से।

11. फिर, यह लगातार निर्धारित किया गया है कि संहिता की धारा 197 के तहत सुरक्षा लोक सेवकों के लिए उपलब्ध है, जब यह कहा जाता है कि कोई अपराध *'अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने के लिए किया गया है* , लेकिन जहां गैरकानूनी लाभ के लिए कार्यालय का उपयोग करके गैरकानूनी कार्य किए जाते हैं, ऐसे कार्यों को संरक्षित नहीं किया जाता है। पहले के कुछ निर्णयों में कानून के कथनों को इस न्यायालय द्वारा *पुलिस इंस्पेक्टर और अन्य बनाम बट्टेनापटला वेंकट रत्नम*[9] *और अन्य* में निम्नानुसार निकाला गया था : -

> "7. इसमें कोई संदेह नहीं है, कि उत्तरदाता कथित आपराधिक आचरण में शामिल थे, जब वे लोक सेवक के रूप में काम कर रहे थे। सवाल यह नहीं है कि वे सेवा में थे या ड्यूटी पर थे या नहीं, बल्कि यह है कि क्या कथित अपराध उनके द्वारा "*अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का इरादा रखते हुए*" किए गए हैं। वह प्रश्न अब पूर्णांक नहीं रह गया है"। शंभू नाथ मिश्रा बनाम यूपी राज्य[10] में, पैरा 5 पर, इस न्यायालय ने कहा कि: (एससीसी पृष्ठ 328)

> "5. सवाल यह है कि जब लोक सेवक पर रिकॉर्ड को गढ़ना के या सार्वजनिक निधि के दुरुपयोग आदि का अपराध करने का आरोप लगाया जाता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसने ये कृत्य

अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए किया है। अपने आधिकारिक कर्तव्यों को आगे बढ़ाने या उसके निर्वहन में झूठे रिकॉर्ड तैयार करना और सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करना आदि लोक सेवक का अपने आधिकारिक कर्तव्यों को आगे बढ़ाने या उसके निर्वहन करना लोक सेवक का आधिकारिक कर्तव्य नहीं कहा जा सकता है।आधिकारिक क्षमता केवल उसे रिकॉर्ड बनाने या सार्वजनिक निधि का दुरुपयोग करने आदि में सक्षम बनाती है। इसका मतलब यह नहीं है कि यह अपराध से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है या अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है अपराध करने के दौरान,एक ही लेनदेन का हिस्सा है, जैसा कि विद्वान न्यायाधीश ने माना था। । इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि मंजूरी के सवाल पर उच्च न्यायालय के साथ-साथ ट्रायल कोर्ट द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता है।"

8. *प्रकाश सिंह बादल बनाम पंजाब राज्य*[11] में , पैरा 20 पर इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया की: (एससीसी पृष्ठ 22-23)

"20. प्रतिरक्षा का सिद्धांत उन सभी कार्यों की रक्षा करता है जो लोक सेवक को सरकार के कार्यों के निर्वहन में करने होते हैं। वह जिस उद्देश्य से निष्पादित किया जाता है वह इन कृत्यों को आपराधिक मुकदमे से बचाता है। हालाँकि, एक अपवाद है। जहां कोई आपराधिक कृत्य सत्ता की आड़ में किया जाता है लेकिन वास्तव में वह लोक सेवक की अपनी खुशी या लाभ के लिए होता है तो ऐसे कृत्यों को राज्य प्रतिरक्षा के सिद्धांत के तहत संरक्षित नहीं किया जा सकता है"।

और उसके बाद, पैरा 38 में, आगे यह निर्धारित किया गया कि: (प्रकाश सिंह बादल केस, एससीसी पृष्ठ 32)

"38. संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी की आवश्यकता से संबंधित प्रश्न पर शिकायत दर्ज होते ही और उसमें निहित आरोपों पर विचार करना आवश्यक नहीं है। यह प्रश्न कि मंजूरी आवश्यक है या नहीं मुकदमे के किसी भी चरण में उठ सकता है और इसे चरण दर चरण निर्धारित किया जाना चाहिए"।

9. *राजीब रंजन बनाम आर. विजयकुमार*[12] के हालिया फैसले में पैरा 18 में, इस न्यायालय ने यह विचार अपनाया किया है कि: (एससीसी पृष्ठ 521)

" 18. . . *अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी, यदि कोई लोक सेवक आपराधिक साजिश में शामिल होता है या आपराधिक कदाचार में लिप्त होता है,इस तरह के दुर्व्यवहार को उनके आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में एक कृत्य के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और इसलिए, संहिता की धारा 197 के प्रावधान आकर्षित नहीं होंगे।*"

(जोर पहले ही दिया जा चुका है)

12. इस न्यायालय द्वारा यह भी देखा गया है कि, कई बार, यह मुद्दा कि क्या कथित कृत्य आधिकारिक कार्यों के निर्वहन से जटिल रूप से जुड़ा हुआ है और क्या यह मामला इस अभिव्यक्ति ' आधिकारिक कर्तव्य या कार्य करते समय या उनके निर्वहन में कार्य करने का तात्पर्य' के अंतर्गत आएगा या नहीं, सबूत मिलने के बाद ही स्पष्ट हो पाएगा और मंजूरी का मुद्दा बाद के चरण में भी उठाया जा सकता है।

***पीके प्रधान बनाम सिक्किम राज्य जो की केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया***[13], इस न्यायालय ने यह कहा:-

> "15. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों के परिप्रेक्ष्य से, यह स्पष्ट होगा कि संहिता की धारा 197 के तहत सुरक्षा का दावा करने के लिए, अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि शिकायत किए गए कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के बीच उचित संबंध है। कोई सरकारी कार्य सरकारी कर्तव्य के निर्वहन में भी किया जा सकता है और उसकी उपेक्षा में भी। संहिता की धारा 197 के तहत सुरक्षा लागू करने के लिए, शिकायत किए गए आरोपी के कार्य ऐसे होने चाहिए कि उन्हें आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से अलग नहीं किया जा सके, लेकिन यदि उनके और उन कर्तव्यों के निर्वहन के बीच कोई उचित संबंध नहीं था, और आधिकारिक पद केवल कृत्यों के लिए अवसर प्रदान करती है, फिर किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी। यदि अभियोजन पक्ष द्वारा रखा गया मामला विफल हो जाता है या बचाव पक्ष स्थापित करते हैं कि किया गया कार्य कर्तव्य के निर्वहन में है, तो कार्यवाही को समाप्त करना होगा। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी का प्रश्न संज्ञान के बाद किसी भी समय उठाया जा सकता है;संज्ञान या आरोप तय होने के तुरंत बाद या मुकदमे के समापन के समय और दोषसिद्धि के बाद भी। लेकिन ऐसे कुछ मामले हो सकते हैं जहां बचाव पक्ष को यह स्थापित करने का अवसर दिए बिना प्रश्न का प्रभावी ढंग से निर्णय करना संभव नहीं है कि आरोपी जो किया वह आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन था या नहीं। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अभियुक्त का यह दावा कि उसने जो कार्य किया वह अपने कर्तव्य के पालन के दौरान किया था, उचित था ना कि दिखावा था और न ही काल्पनिक, की सुनवाई ट्रायल के दौरान अवसर देकर जांच की जा सकती है। ऐसी स्थिति में, मंजूरी के सवाल को मुख्य फैसले में तय करने के लिए खुला छोड़ दिया जाना चाहिए, जो मुकदमे के समापन पर सुनाया जा सकता है"।
>
> (हमारे द्वारा रेखांकित)

13. ***एन. के गांगुली*** के मामले में शामिल अपराध अधिनियम की धारा 13(1)(डी) और 13(2) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के तहत थे, यानी अधिनियम के प्रावधानों के तहत दंडनीय अपराध करने की साजिश से संबंधित थे। दूसरा, यह निष्कर्ष उसमें उपलब्ध तथ्यों के सन्दर्भ में निकाला गया जो निम्नलिखित से स्पष्ट है:-

> "35. उपरोक्त मामले के कानून के अवलोकन से, यह स्पष्ट हो जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत उपयुक्त सरकार से पूर्व मंजूरी प्राप्त करने के उद्देश्य से, यह जरूरी है कि कथित अपराध आरोपी द्वारा आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया हो। विद्वान विशेष न्यायाधीश को कथित अपराध का संज्ञान लेने से पहले,न्यायालय के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ अंतिम रिपोर्ट में निहित आरोपों की जांच करना भी महत्वपूर्ण है ताकि यह तय किया जा सके कि आरोपी के खिलाफ प्रतिवादी को पिछली मंजूरी उपयुक्त सरकार से प्राप्त करने की आवश्यकता है या नहीं। वर्तमान मामले में, चूँकि प्रतिवादी द्वारा दायर अंतिम रिपोर्ट में अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप लगाए गए थे कि कथित अपराध उनके द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए थे, इसलिए, विद्वान विशेष न्यायाधीश के लिए यह आवश्यक था कि वह तय करे की क्या प्रतिवादी को पहले दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत केंद्र सरकार से पिछली मंजूरी लेने की आवश्यकता थी संज्ञान लेने से पहले और अपीलकर्ताओं को उनकी उपस्थिति के लिए समन जारी करने का आदेश पारित करने से पहले।

(हमारे द्वारा रेखांकित)

14. अब हम विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती वी. मोहना द्वारा भरोसा किए गए मामलों की ओर मुड़ते हैं। ***ऋषिपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य***[14] में इस न्यायालय ने कहा:-

"13. उपरोक्त निर्णयों से जो उभरता है वह यह है कि जब प्रारंभिक चरण में किसी अभियोजन को रद्द करने के लिए कहा जाता है, तो अदालत द्वारा लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप प्रथम दृष्टया मामले को स्थापित करते हैं। अदालतों को यह देखना होगा कि क्या शिकायत को जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखने से न्याय की हानि होती है या जब अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि इन कार्यवाही को रद्द करने से अन्यथा न्याय के उद्देश्य की पूर्ति होगी, तब अदालत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकती है। प्रावधान के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय, अदालतों को केवल शिकायत में निर्विवाद आरोप को देखना होगा कि क्या प्रथम दृष्टया अपराध का खुलासा होता है या नहीं, लेकिन इसे खुद को ट्रायल कोर्ट में परिवर्तित नहीं करना चाहिए और तथ्य के विवादित प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार यह निर्णय उन मापदंडों को दरशाता है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत एक आवेदन पर विचार करते समय और यह निर्णय इस मुद्दे पर निर्णय नहीं है। ***अनिल कुमार बोस बनाम बिहार राज्य***[15] का निर्णय एक ऐसे मामले से संबंधित था जो पूर्ण सुनवाई के बाद सामने आया था, जहां आईपीसी की धारा 420/34 के तहत दंडनीय अपराध के संबंध में , यह देखा गया कि आवश्यक घटक आपराधिक मनःस्थिति है, केवल संबंधित कर्मचारियों की ओर से अपने कर्तव्यों का पालन करने या नियमों/प्रक्रिया का पालन करने में विफलता प्रशासनिक चूक हो सकती है, लेकिन इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत दंडात्मक प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है। अदालत के समक्ष तथ्य साक्ष्य के रूप में सामने आने के बाद इस मामले पर विचार किया गया और इस प्रकार, यह निर्णय वर्तमान मामले के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है।

15. मामले पर संपूर्णता से विचार करने के बाद, हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने आपराधिक पुनरीक्षण याचिका की अनुमति देने और मंजूरी के मुद्दे पर प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा उठाई गई चुनौती को स्वीकार करने में स्पष्ट रूप से गलती की। इस प्रकार, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को रद्द करते हैं, ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश को बहाल करते हैं और प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दिए गए आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज करते हैं।

16. यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने केवल मंजूरी जारी करने से संबंधित मूल मुद्दे पर विचार करने के उद्देश्य से तथ्यों और आरोपों पर ध्यान दिया है और यह नहीं माना जाएगा कि हमने योग्यता के आधार पर कोई विचार व्यक्त किया है जिस पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाएगा। विद्वान अधिवक्ता द्वारा बताया गया कि मामला 11.12.2019 को विशेष न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध है। प्रतिवादी नंबर 1 उस दिन विशेष अदालत के सामने पेश होगा और उसके बाद मामले को कानून के अनुसार आगे बढ़ाया जाएगा।

17. यह अपील पूर्वोक्त शर्तों पर स्वीकार की जाती है।

सौदामिनी सिंह द्वारा

---

[1] बेंगलुरु स्थित कर्नाटक  उच्च न्यायालय
[2] एआईआर 1998 एससी 2595
[3] (1996) 1 एससीसी 478
[4] (2014) 16 एससीसी 807
[5] (2016) 2 एससीसी 143
[6] [1958] SCR 1037
[7] (1970) 3 एससीसी 537
[8] (1991) 3 एससीसी 655
[9] (2015)13 एससीसी 87
[10] ( 1997) 5 एससीसी 326
[11] (2007) 1 SCC 1
[12] (2015) 1 एससीसी 513
[13] (2001) 6 एससीसी 704
[14] (2014) 7 एससीसी 215
[15] (1974) 4 एससीसी 616